हरिद्रा
(सांस्कृतिक शोध का अन्तर्राष्ट्रीय उपक्रम)
ISSN : 2582-9092

जैनधर्म का उद्भव और उसकी प्राचीनता

निदेशक– सुखदेव बाजपेयी शोधार्थी– कीर्ति सांधेलिया

सारांश – यह देश अपने इतिहास के आरम्भ से ही महान आदर्श का कायल रहा है। हमारे यहॉ आदर्श मानव उसे ही माना गया है, जो आत्मा की सर्वोपरिता और भौतिक तत्वों पर आत्मतत्व की श्रेष्ठता प्रस्थापित करे। यह आदर्श पिछली चार या पांच सहस्राब्दियों से हमारे देश के धार्मिक दिगन्त पर हावी रहा है। मानव जाति के इन महापुरूषो में एक हैं– ऋषभदेव उन्हें जिन अर्थात विजेता कहा गया है। तप, संयम्, आत्मशुद्धि और विवके की अनवरत प्रक्रिया से उन्होंने अपना उत्थान करके दिव्य पुरूष का पद प्राप्त कर लिया। उनका उदाहरण हमें भी आत्मविजय के उस आदर्श का अनुसरण करने की प्रेरणा देता है।

हिन्दू ग्रन्थों में कहा गया है कि ऋषभदेव स्वयंभू की पांचवी पीढ़ी में हुए थे। और इस तरह वे प्रथम सतयुग के अन्त में हुए। अब तक अठ्ाईस सतयुग बीत चुके है। अससे भी उनके समय की दीर्घता का अनुमान लगाया जा सकता है, अतः जैनधर्म का आरमी काल बहुत प्राचीन सिद्ध होता है।

यहां बाल गंगाधर तिलक के भी जैनधर्म के बारे में विचार द्रष्टव्य है– भारत में यह धर्म बौद्ध धर्म से पहले मौजूद था। प्राचीन काल में असंख्य पशुओं की बलि दी जाती थी। इस बलि–प्रथा को समाप्त कराने का श्रेय जैनधर्म को है।

मुख्य शब्द – अहिंसावाद, व्युतपत्ति, योगमुद्रा, स्थानापन्न, परिकल्पना ।

जैनदर्शन के पिरचय के पूर्व डॉ0 मंगलदेव शास्त्री का निम्न कथन पढ़ना अधिक उपयुक्त है, क्योंकि इससे यह पता चलता है कि जैनदर्शन के परिचय से ही भारतीय संस्कृति को समझा जा सकता है भारतीय विचारधारा में अहिंसावाद के रूप में जैनदर्शन और जैन विचारधार की जो देन है, उसको समझे बिना वास्तव में भारतीय संस्कृति के विकास को नही समझा जा सकता।

जैन शब्द जिन शब्द से बना है। जिन शब्द की व्युत्पति संस्कृत भाषा की जी धातु से हुई है, जिसका अर्थ है– जीतना। इस दृष्टि से जैनधर्म के ईश्वर को इन्द्रियाविजयी और कषायविजयी होने से जिन कहा जाता है। वैसे तो जैनदर्शन में ईश्वर समभावी होता है, उसका कोई शत्रु और मित्र नहीं होता अतः उन्हें किसी शत्रु को जीतने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है, तथापि वे अनादि से आत्मिक स्वभाव के अन्तरंग शत्रु राग–द्वेष–मोहादि को जीत लेते है। इसप्रकार वे जिन कहलाते है।

जैन धर्म विश्व का प्राचीनतम और स्वतंत्र धर्म है। इसके विषय में एक भ्रम रहा है कि भगवान महावीर ने उसकी नींव डाली ब्राह्मण धर्म के प्रति जन–साधारण में व्याप्त असंतोष के कारण उसका आविर्भाव हुआ अथवा वह हिन्दू धर्म का एक अंग है, आदि।

ISSN : 2582-9092

इस विषय में अनेक ख्यातिप्राप्त इतिहासकारों पुरातत्ववेत्ताओं और अनुसंधानकर्ताओं ने प्रकाश डाला है। उनके लेखों से उद्धृत कुछ अंश इस अध्याय में प्रस्तुत है, जो यह सिद्ध करते है कि जैन धर्म बहुत प्राचीन और स्वतंत्र धर्म है।

जैनों के प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव थे, जैसा कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई से प्राप्त मुद्राओं के सूक्ष्म अध्ययन से प्रतीत होता है यहां रामप्रसाद चन्दा के लेख का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत है–

सिन्धु घाटी की अनेक सीलों में उत्कीर्णित देवमूर्तियां न केवल बैठी हुई योगमुद्रा में है और सुदूर अतीत में सिन्धु घाटी में योग के प्रचलन की साक्षी है, अपितु खडी हुई देवमूर्तियां भी है, जो कायोत्सर्ग मुद्रा को प्रदर्शित करती है। कायोत्सर्ग मुद्राविशेषतः जैन मद्रा है। यह बैठी हुई नही, खड़ी हुई।

श्री रामप्रसाद चन्दा सिन्धु लिपि के चिह्न कमांक 383 को खडे हुए चतुर्भुजी देवता का प्रतिरूप मानते है, जो उनके विचार में ब्रह्मा विष्णु, शिव की चतुर्भुजी हिन्दू देव–प्रतिमाओं का पूर्वरूप था। उन्होंने 6 अन्य मुहरों पर खडी हुई मूर्तियों की ओर भी ध्यान दिलाया है। फलक 12 और 118 आकृति 7 कायोत्सर्ग नामक योगासन में खड़े हुए देवताओं को सूचित करती है। यह मुद्रा जैन योगियों की तपश्चर्या में विशेष रूप से मिलती है, जैसे मथुरा संग्राहालय में स्थापित तीर्थकर श्री ऋषभ देवता की मूर्ति में है।

पद्मश्री रामधारी सिंह दिनकरलिखते है– बौद्ध धर्म की अपेक्षा जैन धर्म अधिक, बहुत अधिक प्राचीन है, बल्कि यह उतना ही पुराना है, जितना वैदिक धर्म। जैन अनुश्रुति के अनुसार मनु चौदह हुए है। अन्तिम मनु नाभिराय थे। उन्हीं के पुत्र ऋषभदेव हुए, जिन्होंने अहिंसा और अनेकान्तवाद आदि का प्रवर्तन किया। भरत ऋषभदेव के ही पुत्र थे, जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा।

जैन धर्म का साहित्य मौलिक है। इसकी भाषा भी स्वतंत्र है। इसका कानून भी हिन्दू कानून से पृथक है। एसी भिन्नता की सामग्री को ध्यान में न रखकर कोई–कोई इसे आर्य धर्म की शाखा बताने में अपने को कृतार्थ मानते है। मद्रास हाईकोर्ट के स्थानापन्न प्रधान विचारपति श्रीकुमार स्वामी शास्त्री ने हिन्दूधर्मावलम्बी होते हुए भी सत्यानुरोध से यह लिखा है–

शोध उद्देश्य – जैन धर्म से सबंधित शोध–जगत में विगत अर्थ शताब्दि में व्यापक परिवर्तन हुये हैं। न केवल भारतीय शोधार्थी अपितु विदेशी शोधार्थियों ने भी इस क्षेत्र में अपनी रूचि दिखलाई है। जैन धर्म एवं जैन साहित्य व जैन मुनि परंपरा का इतिहास बहुत पुराना है। लगभग 4500 वर्ष पुराना यह धर्म अहिंसा सत्य संयम चोरी न करना एवं वैराग्य आदि की शिक्षा देता है। ये इस धर्म को पांच महान प्रतिज्ञायें कहलाती है। जैन धर्म वीत–राग पर आधारित धर्म है जो कि सही धारणा सही ज्ञान एवं सही आचरण के माध्यम से जन्म मृत्यु एवं पुनर्जन्म के चक्र को तोड़कर मौक्ष को प्राप्त करने के विषय को बतलाता है। वर्तमान में न केवल भारत वर्ष अपितु विदेशों में भी जैन धर्मावलांबियों की बड़ी संख्या है जो इसे और भी समृद्ध कर रहीं है।

ISSN : 2582-9092

शोध पद्धति – परिकल्पना अर्थात् पूर्व–चिन्तन। किसी भी कार्य को करने से पूर्व हम मस्तिष्क में विचार करते है, और यह विचार ही एक प्रकार की कल्पना है। शोध कार्य परिकल्पना के निर्माण एवं उसके परीक्षण के मध्य की प्रक्रिया है। इसके अलावा परिकल्पना को संभावित समाधान भी कहा जाता है। यहां पर पूर्व कथन को अस्थाई रूप से सही इस प्रकार परिकल्पना का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार परिकल्पना एक विचार दशा या सिद्धान्त होती है, जो संभवतः बिना किसी विश्वास के स्वीकार कर ली जाती है, जिससे कि उनके तार्किक परिणाम निकाले जा सकें तथा तथ्यों को सहायता से विचार की सत्यता की जांच की जा सकें।

प्रस्तुत शोध निम्न परिकल्पनाओं पर आधारित है :–

1. आधुनिक काल में जैनधर्म एंव जैन ग्रन्थों के अध्ययन एवं चिन्तन कार्य में व्यापक प्रगति हुई है।
2. जैन धर्म के प्राचीन ग्रन्थों की पुरानी पाण्डुलिपियों को सुरक्षित एवं संरक्षित करने का कार्य किया गया है ताकि शोधार्थी एवं जिज्ञासुजन उनका लाभ ले सकें।
3. जैन धर्म ग्रन्थों पर शोध करने वाले शोधार्थियों द्वारा बारस अणु वेक्खा पर शोध कार्य तो किये गये है किन्तु इसका दार्शनिक पक्ष अभी सामने आना अभी प्रतीक्षित है।
4. जैन धर्म के प्राचीन ग्रन्थों पर अभी शोधकार्य एवं शोध प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है।
5. जैन ग्रन्थों पर शोधकार्य करने वाले शोधर्थियों का प्रोत्साहन एवं ऐसे संस्थान स्थापित करने की आवश्यकता है जहा शोध सामग्री सहज रूप से उपलब्ध हो सके।

विश्लेषण – जब धर्म की प्रवृत्ति आरंभ होती है, तो उसका विरोध भी आरंभ हो जाता है और असली धर्मात्माओं से अधिक नकली धर्मात्मा खड़े हो जाते है। जब आदितीर्थकर धर्म प्रवर्तक आदिब्रह्मा आदिनाथ का धर्मचक्र रूप समवशरण प्रवर्त रहा था, तभी से उसके विरोध स्वरूप उन्हीं का पौत्र मारीच सामने आया और उसने सत्य धर्म का विरोध कर नकली 363 धर्मो का प्रवर्तन करना शुरू कर दिया।

धर्म के परिचय के प्रसंग में उसका प्रवर्तक कौन था– यह प्रश्न उत्पन्न होता है, किन्तु यह धर्म शाश्वत सत्य से सम्बन्धित होने से इसका वास्तविक प्रवर्तक तो किसी को नहीं कहा जा सकता किन्तु कालचक्र के प्रत्येक दुषमा–सुषमा युग के प्रारम्भ में इसका प्रवर्तन करने वाले कोई न कोई तीर्थकर होते है। वर्तमान काल के प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव है, अतः औपचारिक दृष्टि से इस धर्म के प्रवर्तक उन्हें कहा जा सकता है।

श्रामधारी सिंह दिनकर ने भी जैन धर्म को वैदिक परम्परा के समानान्तर बताया है– वेद और पुराण चाहे जो भी कहें किन्तु ऋषभदेव की कृच्छ साधना का मेल ऋग्वेद की प्रवृत्तिमार्गी धारा से नहीं बैठता। वेदोल्लिखित होने पर भी ऋषभदेव वेदपूर्व परम्परा के प्रतिनिधि है। जब आर्य इस देश में आये, उससे

ISSN : 2582-9092

पहले ही यहां वैराग्य, कृच्छ, साधना योगाचार और तपश्चर्या की प्रथा प्रचलित हो चुकी थी। इस प्रथा का विकास जैन धर्म में हुआ और दूसरा शैव में।

निष्कर्ष – प्रायः जनसामान्य में यह सहज जिज्ञासा रहती है कि धर्म आखिर क्या है धर्म किसे कहते है वास्तव में इस प्रश्न के उत्तरस्वरूप यह कहा जा सकता है कि अहिंसक वीतराग परिणति का नाम ही वास्तविक धर्म है अथवा वस्तु के स्वरूप की सत्य समझ का नाम धर्म है।

वस्तु के स्वभाव का नाम धर्म है, लेकिन लोगों ने उसका संकुचित मतलब निकाल लिया है। उनका कहना है कि जिस कुल और जाति में जन्म लिया है उसी कुल और जाति से सम्बन्धित धर्म को स्वीकार करो। और धर्म परिवर्तन ठीक नहीं है। अपने धर्म में मरना ही श्रेयस्कर है– स्वधर्मे निधनो श्रेयः परधर्मे च भयावहः । उक्त पंक्ति का जो भाव है वह तो इतना ही है कि अपने आत्मा का जो धर्म अर्थात् स्वभाव है उसी में निधन अर्थात् रमण करना ही श्रेयस्कर है और बाह्य परद्रव्यों में विचरण करना भय का कारण है।

इतने उच्च अर्थ को लोगों ने अपनी छोटी मानसिकता से किस प्रकार जोड़ दिया यह विचारणीय है। यदि जाति और कुल से ही सभी श्रेष्ठ हो तो जगत के सभी उच्च हो जाये। धर्म करने के लिए जाति की कोई शर्त नहीं है, भगवान आत्मा के अनुभव करने की शर्त अवश्य है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. वत्थु सहावो धम्मो, अष्टपाहुड, आचार्य कुन्दकुन्द, पं. टोडरमल स्मारक, जयपुर
2. भगवान महावीर का शिक्षादर्शन, डॉ. शुद्धात्मप्रकाश जैन, ज्ञान भारती जयपुर,
3. स्मणसुत्तं संकलनकर्ता विनोबा भावे, सम्पादिका–डॉ.गीता मेहता एवं डॉ. कोकिला शाह, सोमैया पब्लिाकेशन, मुम्बई
4. डद्धृत, जैनधर्मः एक झलक, डॉ. अनेकान्त जैन, आशीर्वचन, श्री शांतिसागर छाणी ग्रन्थमाला, मेरठ
5. Not only the seated deities engraved on some of Indus seals are in Yoga posture and bear witness to the prevalence of Yoga in the Indus Valley in the remote age, the standing deities on the seals also show kayotsarga posture of Youg. The Kayoutsarga (dedication of the body) posture is peculiarly jain. It is a posture, not of sitting, but of standing. By Ram Prasad Chanda, Modern Review, Calcutta, August 1932, pp. 158-159
6. Hindu Civilization, Dr. Radhakumud Mukarji, Rajkamal Publication, 1966, p.39
7. T.N. Ram Chandran, Harappa and Jainism, p.6

ISSN : 2582-9092

8. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, 1956 पृष्ठ– 146
9. जनरल ऑफ दी बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, मार्च 1977 पृ–13
10. Short studies in the science of comperative Religions,p. 243-44
11. भारतीय इतिहास और संस्कृति डॉ. विशुद्धानन्द और डॉ. जयशंकर प्रसाद, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्रष्ठ– 199
12. भारत और मानव संस्कृति, विरूपाक्ष वाडियार, पृष्ठ–114
13. अनेकान्त पत्रिका, वर्ष–10 पृष्ठ–114
14. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ–101
15. Sir Kumarswami Acting Chief justice Madras High Court Vide jain Law Supplement by C.R. Jain Bar-at-law.
16. An eminent archaeologist says that if we draw a circle with a radius of ten miles, having any spot in india as the centre, we are sure to find some jain remains within that circles. Vide kannad Monthly Vivekabhyudaya P. 96,1940
17. सर राधाकृष्णन् इंडियन फिलॉसफी, पृष्ठ 287
18. अहिंसा वाणी, जुलाई. 92ण पृष्ठ–197–198
19. आजकल, मार्च 1962, पृ.8 (जै.मौ.इ.त.पृ.60)
20. महावीरजयन्ती स्मारिका 1964, पृ. 42
21. श्रीमद्भागवत, 5 / 5 / 28 (जै.मौ.इ.त.पृ.59)
22. तीर्थकर वर्द्धमान, पृ. 15
23. महावीरजयन्ती स्मारिका 1968, पृ. 128
24. जैनधर्म, पृ. 11
25. भगवान महावीर 2600वां जन्मकल्याणक महोत्सवः योजना एवं प्रगति, साउथ कैम्पस, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. 43.

शोधार्थी
संस्कृत विभाग,
स्वामी विवेकानंद यूनिवर्सिटी, सागर